# रियासतकाल के दौरान पश्चिमी राजस्थान में जल प्रबंधन की तकनीक

**डॉ. सुमन देवी**

वर्तमान में जल प्रबंधन के कई स्रोत विद्यमान है जिनमें नहरें, ट्यूबवैल, हैण्डपम्प, नलकूप तथा कुँए आदि प्रमुख है। इन स्रोतों के माध्यम से जल मनुष्य की पहुंच में सरलता से आ गया है, परन्तु मध्यकाल में रेगिस्तानी राज्यों में आधुनिक जलीय स्रोतों के न होने के कारण तत्कालीन प्रचलित स्रोतों तालाबों, कुओं, तथा बावड़ियों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। स्थानीय जलीय स्रोतों में जल स्तर के नीचे होने, भूमिगत जल के मीठा नहीं होने तथा जलीय स्रोतों की उपलब्धता की कमी के कारण मनुष्य के जीवन के लिए बड़ी विकट स्थिति बन जाती थी। इस आलेख में तत्कालीन प्रचलित जल संसाधनों एवं उनके प्रबंधन की तकनीकों का उल्लेख किया जा रहा है।

## तालाब

मध्यकालीन राजस्थान में प्रत्येक गाँव में पेयजल की व्यवस्था हेतु तालाब हुआ करते थे। गांव बसने के साथ ही तालाब का निर्माण किया जाता था। तालाब में वर्षा का अधिकांश: जल संरक्षित हो जाता था जिसका उपयोग ग्रामवासी अपने एवं पशुओं के लिए पेयजल, गृह निर्माण कार्य व अन्य कार्यो में करते थे। तालाबों से ही भूमिगत जल स्रोतों में पानी का संग्रहण वर्षा के समय में होता था। जब तालाब में पानी होता था, तब कुँए और बावड़ियों में भी पानी आ जाता था।

## तालाब निर्माण की प्रक्रिया

भारतीय समाज में सदियों से तालाब बनाये जाते रहे हैं और वे भी हजारों की संख्या में। विशेषकर राजस्थानी समाज में तालाबों का अपना विशेष महत्व है लेकिन इसके निर्माण की क्रमबद्ध प्रक्रिया का वर्णन कहीं देखने को नहीं मिलता और हमारे दिमाग में इससे संबंधित प्रश्न सदैव घूमते रहे है। तालाब कैसे बनते थे ? कैसे बनाए जाते थे ? कौन बनाता होगा आदि।

तत्कालीन कालखण्ड में तालाब बनाने के लिए योग्य जगह का चुनाव करते समय कई बातों का ध्यान रखा जाता था। जैसे- तालाब का निर्माण स्थल *गोचर* की तरफ है

या वह स्थल ढाल में है अथवा निचला क्षेत्र है। तालाब में जहाँ से पानी आएगा, वहां की जमीन *मुरूम* वाली है। उस तरफ शौच आदि के लिए लोग नहीं जाते है आदि बातों का ध्यान रखा जाता था।

तालाब बनाने की योजना के साथ ही सम्पूर्ण चित्र आँखों के समक्ष उतार लिया जाता था। *आगोर* कितना होगा, पाल कितनी ऊँची व चौड़ी होगी, कहाँ से कहाँ तक बंधेगी तथा तालाब में पानी पूरा भरने पर उसे बचाने के लिए कहाँ *अपरा* बनेगी आदि। गाँव में आवाज लगाकर लोगों को इकट्ठा किया जाता था ताकि सब लोग एक साथ काम पर आएं और साथ में ही काम खत्म होने पर वापस लौट जाएं। मिट्टी का कच्चा काम पूरा हो जाने पर पक्का काम किया जाता था।

*पाल* का काम पूरा होने पर नेष्टा का निर्माण किया जाता था। *नेष्टा* अर्थात वह जगह, जहाँ से तालाब का अतिरिक्त पानी पाल को नुकसान पहुँचाए बिना बह जाएगा। नेष्टा के लिए कुछ क्षेत्रों में निसृष्ट या निस्तरण या निस्तार शब्द का प्रयोग किया जाता है। *पाल* और *नेष्टा* का काम पूरा होने पर तालाब का *आगर* या *आगोर* तैयार हो जाता था। कार्य पूर्ण होने पर फिर से सभी लोगों को एक साथ बुलाया जाता था और घटोइया देवता की प्राण-प्रतिष्ठा करवाई जाती थी। *आगर* के स्तम्भ पर गणेश जी की भी मूर्ति स्थापित की जाती थी। सबके लिए भोजन बनता, प्रसाद बांटा जाता और तालाब को एक सुन्दर नाम भी दिया जाता।

तालाब बनाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका 'गजधर' निभाते थे। *गजधर* एक सुंदर शब्द है, तालाब बनाने वालों को आदर के साथ याद करने के लिए। *गजधर* यानी जो गज को धारण करता है और गज वहीं जो नापने के काम आता है। समाज ने इन्हें तीन हाथ की लोहे की छड़ लेकर घूमने वाला मिस्त्री नहीं माना। *गजधर* तो समाज को नाप ले उसे ऐसा दर्जा दिया है। *गजधर* वास्तुकार थे। काम पूरा होने पर पारिश्रमिक के अलावा *गजधर* को सम्मान भी मिलता था।

*नेष्टा* को पहले वर्ष छोटा बनाते है। *पाल* कुछ छोटा क्योंकि नई पाल पानी पीने से कुछ धसेगी, इसलिए तालाब में पानी ज्यादा रोकने का लालच नहीं करते। एक वर्ष पश्चात जब तालाब की *पाल* वर्षा के पानी से पक्की हो जाती थी। तब आवश्यकतानुसार *नेष्टा* को कुछ ऊपर उठाते थें, जिससे तालाब ज्यादा पानी रोक पाता था। तालाब और *पाल* का आकार बड़ा होने पर घाट के चारों ओर पत्थर की सीढ़ियां भी बनाई जाती थी। तालाब के बीच की भूमि को *लाखेटा* कहा जाता है। 'लाखेटा' जिस पर किसी सिद्ध, प्रसिद्ध व्यक्ति

की सुन्दर छतरी भी बनी मिलती है और कभी-कभी *लाखेटा* के ज्यादा बड़ा होने पर छतरी के साथ-साथ खेजड़ी और पीपल के पेड़ भी लगा दिये जाते थे।

इस प्रकार तालाब के पहली बार भर जाने पर इसकी रखवाली का काम भी शुरू हो जाता था ताकि लम्बे समय तक तालाबों को ठीक-ठाक व व्यवस्थित बनाए रखा जा सके और सब मिल-जुल कर इस काम को बड़े सहज ढ़ग से करते थे।

अधिकतर तालाब आकार में बड़े एवं आयाताकार होने के कारण इनका तला पक्का होता है। हर तालाब की *आगोर* होती है। अधिकांशत: तालाबों का ढलान गऊ घाट की तरफ होने के कारण से तालाबों पर पशुओं का जमघट लगा रहता हैं। बीकानेर में सांसोलाव, हर्षोलाव, सागर, देवीकुण्ड तथा कल्याणसागर आदि इसके उदाहरण है।

तालाब सिंचाई का भी प्रमुख साधन थे। इन तालाबों को हर दृष्टि से दर्शनीय एवं रमणीक स्थल के रूप में विकसित किया जाता था। भिति-चित्रों से युक्त तालाबों के बरामदे, तिबारें, छतरियाँ और वहां स्थापित प्रतिमाएँ स्थापत्य कला के बेजोड़ उदाहरण है।

जलीय स्त्रोतों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु प्रशासन द्वारा अनेक उपाय किये जाते थे। सूखें के दौरान तालाब की मिट्टी निकलवाकर *पाल* बना दी जाती थी, जिससे तालाब की गहराई बनी रहती थी एवं वह उथला होने से बचा रहता था। तालाब के आस-पास के क्षेत्र में कुँओं का निर्माण करवाया जाता था ताकि तालाब में एकत्रित होने वाला वर्षा का जल व्यर्थ ही भूमि में न रिस जाये जबकि वही एकत्रित जल समीपवर्ती कुँओं में जल की आपूर्ति (रिचार्ज) को बनाये रख सके। तालाबों, *नाडियों* व *जोहड़ों* को वर्षा ऋतु के आगमन से पूर्व ही साफ करवाया जाता था व इनकी मरम्मत भी करवाई जाती थी।

राज्यों द्वारा कुँओं की सुरक्षा हेतु माली को नियुक्त किया जाता था एवं कई बार सरकारी कर्मचारी भी नियुक्त किया जाता था। 1773 ई. में नागौर शहर के अधुल्या कुँए के संचालन हेतु माली नानग को नियुक्त किया गया था। इसके लिए बारह रूपये प्रतिमाह का वेतन निर्धारित किया गया था। इसी तरह से कुँओं, बावड़ियों व तालाबों के पास देवी-देवताओं की मूर्ति प्रतिष्ठापित की जाती थी, जिसके पीछे यही भावना होती थी कि इन स्थानों को दैवीय स्थल की भांति पवित्र समझा जाये ताकि सदैव इनकी स्वच्छता बनी रहे।

## कुएँ

मध्यकाल के दौरान राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्रों में कुएँ पेयजल प्रबंधन का प्रमुख साधन थे। गावों में प्रत्येक जाति-वर्ण के लिए पृथक रुप से कुओं का निर्माण समाज अथवा राज्य द्वारा किया जाता था।

## कुँओं के निर्माण की प्रक्रिया

उत्तर-पश्चिमी राजस्थान में कुँओं का अधिक महत्व रहा हैं। सामान्यत: रियासत काल में दो प्रकार के कुओं का वर्णन मिलता हैं, यथा- छोटा कुआँ एक *तीवण* तथा बड़ा कुँआ दो *तीवण* का होता था। लेकिन यहां चार *तीवण* कुंए भी मिलते है। इन कुओं का निर्माण उस समय ताजीमी उपाधि प्राप्त व्यक्ति जैसे कि राय बहादुर, राजा, सेठ लोग ही कर सकते थे। कुंओं की खुदाई से पूर्व *सूंघों* की मदद ली जाती थी जो जमीन सूंघकर यह बताया करते थे कि पानी मीठा है या खारा। यह एक गजब संयोग ही था कि *सूंघों* द्वारा बताए अनुमान शत-प्रतिशत सही निकलते थें। इसी कर्म के आधार पर सूंघा जाति बनी।

कुंआ खुदाई के साथ-साथ ही यहाँ बंधाई होती थी। इस प्रक्रिया को 'बिलिया बधाई' कहा जाता था। संदर्भ ग्रन्थों को टटोलने पर ज्ञात होता है कि सन् 1888 ई. तक कुंओं से पानी खींचने के लिए बैलों का उपयोग होता था। कुओं को जिस पत्थर से ढ़का जाता था, वह खड़ा होता था। इसमें *तीवण* का छेद कर *भूण* (चरखी) लगाई जाती थी। *भूण* के ऊपर से *चरस* या *बरत* (डोरी) निकालकर बैल अथवा ऊँट के जुआड़े में बांधी जाती थी। *बरत* के सिरे में गांठ खीली ठोक दी जाती थी। बैल जिस रास्ते डोल खींचतें थें, उसे *सारण* कहा जाता था। पूरा डोल कुंए से पानी भरकर जब ऊपर आता था तब बारा खींचने वाला आवाज लगाता था।

*आयो.....रे आयो, खिली छोड़ो राजाराम.....।*

यह आवाज कुंए में मुंह कर निकाली जाती थी। जिससे *किलिया* (बैल हांकने वाला) *बरत* (डोरी) की किली खोल देता था, और आवाज लगाने वाला पानी के डोल को कुंए से बाहर खींचकर पानी *खेली* में डाल देता था। *भूण* की गति को रोकने के लिए एक छोटी *बरत* (डोरी) *भूण* के चारों तरफ लपेट दी जाती थी, जोकि *भूण* को रोकने का काम करती थी। उस समय के पुराने लोग बताते है कि ऐसे ताकतवर लोग भी थे, जो कुँए की गहराई से अपने हाथों की ताकत से पानी खींच कर बाहर निकाल लेते थे।

## जोहड़े

उत्तर-पश्चिम राजस्थान के अनेक गाँवों और कस्बों में निर्मित सदाबहार जोहड़े आज भी गौरवमय अतीत के साक्षी है। इनकी बनावट सभी जगह लगभग एक जैसी है। ग्रामीण क्षेत्रों में कच्ची जोहड़ियां हैं तो कस्बाई इलाकों में पक्के *जोहड़े* बने हुए है। प्रत्येक *जोहड़े* के साथ गऊ घाट भी बना हुआ है। जहाँ पशु पानी पीते है। पक्के *जोहड़ों* की चार दिवारी बनी होती थी और उसके चारों कोनों पर कलात्मक छतरियां बनी हुई होती थी। चार

दीवारी के शीर्ष स्थान के साथ-साथ पक्का रास्ता भी बना होता था जिसकी सहायता से *जोहड़े* के चारों ओर चक्कर लगाया जा सकता था।

*जोहड़े* के अन्दर पक्की *फिरनियां* बनाई हुई होती थी। सबसे गहरे स्थान को ''बीच की चोभी'' कहते थे, जो आम तौर पर *जोहड़े* के जल भराव वाले सबसे ऊँचे स्थान से बीस से लेकर तीस फीट तक गहरी होती थी। इस *चोभी* के चारों ओर एक के बाद एक *फिरनियां* बनी हुई होती थी, जिन्हे *चोपड़ा* कहा जाता है। पुराने समय में बरसात का अन्दाज इस बात से लगाया जाता था कि जोहड़े की कितनी *फिरनियां* अथवा चोपड़े पानी में डूब गये है। न्यूनतम दो-तीन ओर अधिकतम सात-आठ फिरनियां बनी हुई होती थी। जितनी ज्यादा *फिरनियां* होगी जोहड़ा उतना ही ज्यादा गहरा होगा। ये *फिरनियां* एक तरह से *जोहड़े* के पाट होते है। अतिवृष्टि के समय जब *जोहड़ा* लबालब भर जाता है तो सारी *फिरनियां* पानी में डूब जाती है। भाद्रपद माह में कृष्ण पक्ष की द्वादशी को विवाहित स्त्रियां *जोहड़ों* की पूजा करती है। कई *जोहड़ों* के इर्द-गिर्द परम्परागत रूप से वार्षिक मेले भी भरते है। पशु मेलों के लिए तो *जोहड़ों* के आस-पास का स्थान सर्वोत्तम माना जाता है।

## बावड़ी

बावड़ी बनाने के लिए नक्शा बनाया जाता था और इमारतखाने में सुरक्षित रखे जाते थे। *बाव* या बावड़ी संस्कृत के *वापी* या *वापिका* से बना है। *वापी* या *वापिका* से तात्पर्य है जहां जल स्तर तक पहुंचने के लिए पांच या सात सीढ़ियों की कई शृंखलाएं हो। बावड़ी प्राकृतिक जल स्त्रोतों के चारों ओर बनाई जाती है। सोपान युक्त बावड़ी के स्थापत्य में सामान्यत: कुण्ड तथा वापी के अंगों का सन्तिवेश रहता है। अत: एक बावड़ी के तीन प्रमुख अंग होते है:-

1. कूप या वृत्ताकार लम्ब जहां से पानी रहट के द्वारा खींचा जाता है।
2. सीढ़ियों पर बने छायादार स्तम्भयुक्त कक्ष ।
3. चारों ओर सोपान युक्त कुण्ड ,जिसमें पीने का जल या स्नानादि के जल का संग्रहण किया जाता है।

कुछ बावड़ियों में मनुष्यों तथा पशुओं के लिए पृथक कुण्ड भी बने हुए मिलते है। बावड़ी का कुण्ड आयाताकार, वर्गाकार या अष्टभुजाकार होता है।

जल स्तर भूमि के स्तर से काफी नीचे होता है जिससे बावड़ी के घटते-बढ़तें जल स्तर का प्रभाव उसके उपयोग में बाधक न हो।

## जल स्त्रोतों की सुरक्षा के प्रयास

वर्तमान विश्व जल की कमी की समस्या से जूझ रहा है। जल की कमी कोई नई समस्या नहीं है, राजस्थान के अधिकांश हिस्से के साथ-साथ देश व विदेश के बहुत सारे हिस्से ऐसे है, जहाँ पर लोगों को पानी की कमी से जूझना पड़ रहा है। ऐसी दशा में उत्तरी-पश्चिमी राजस्थान में महत्वपूर्ण विशेषता यह देखने को मिलती है कि यहाँ के लोगों ने प्रारम्भिक काल से ही जल स्त्रोतों के महत्व को समझा व उनके निर्माण के लिए प्रयास किए। यहाँ के स्थानीय लोगों ने जल संचयन हेतु उक्त कृत्रिम स्त्रोतों का निर्माण किया तथा वर्षा जल की प्रत्येक बूँद का व्यवस्थित उपयोग करने वाली लोक कथाएं तथा आस्थाएं विकसित की, जिनके आधार पर ही यहां के लोगों ने इतनी कठिन परिस्थतियों को भी अपने अनुकूल बनाया।

राज्य के प्रत्येक गाँव में एक तालाब, *नाडी* या *जोहड़* होता था, जिससे लोगों व पशुओं के लिए पेयजल की व्यवस्था की जाती थी। नए गाँव के बसने के समय बसावट की मूलभूत आवश्यकताओं के तहत गाँव में बसने वाली जनता के लिए कुँए या तालाब का निर्माण करवाना भी राजा के लिए प्रथम आवश्यकता माना जाता था। विभिन्न उदाहरणों से पता लगता है कि राजा-महाराजा, सन्त-महात्मा एवं आम जनता के द्वारा जल स्त्रोतों की सुरक्षा के विभिन्न प्रयास किये जाते थे। राजा एवं राज परिवार के लोग इसे अपना प्रथम कर्तव्य मानते थे।

बीकानेर राज्य के पुरालेखीय दस्तावेज पर्यावरण से जुड़े विविध पक्षों जैसे वर्षा, अकाल, जलीय इकाईयों के निर्माण व उनकी व्यवस्था के साथ-साथ वनस्पति एवं जीव-जन्तुओं आदि पर भी उपयोगी जानकारी प्रदान करती है। राजस्थान का उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र ''चारागाह'' भूमि की दृष्टि से सदैव समृद्ध रहा है। राज्य में पशुओं के चारे की व्यवस्था के लिए भी विशेष रूप से चारागाह बनवाये जाते थे या *गोचर* भूमि रखी जाती थी। तालाब के *आगोर* में भी चारागाह भूमि संरक्षित की जाती थी। जिसमें राज्य व जागीरदारों अथवा राज्याधिकारियों के पशुओं को चराया जाता था। राज्य में स्थित चारागाहों एवं पेड़ों की कटाई और जल स्त्रोतों को नुकसान पहुँचाने पर कई प्रकार के टैक्स भी लगाये जाते थे, जो कि राज्य प्रशासन की जिम्मेदारी को दिखाते थे।

तालाब, *नाडी* एवं *जोहड़* के आस-पास व इनके *पायतन* क्षेत्र में लगे पेड़-पौधों को भी नहीं काटा जाता था एवं यदि काटा भी जाता था तो उससे प्राप्त रकम को इन्हीं जलीय इकाईयों की मरम्मत एवं संवर्धन हेतु प्रयोग किया जाता था। आमजन ही नहीं

बल्कि जागीरदार या बड़े राज्याधिकारी भी अपने अधीनस्थ क्षेत्र के तालाब क्षेत्र के पेड़ पौधों को अपने निजी स्वार्थ हेतु उपयोग नहीं ले सकते थे। राज्य द्वारा 'गईवाल' लोगों की सम्पत्ति का पैसा भी राजकोष में जमा करने की बजाय तालाबों एवं कुँओं की मरम्मत हेतु ही उपयोग किया जाता था।

सामान्यत: मेलों के समय राज्य के सायर विभाग द्वारा लोगों से ''तालाब री चुंगी'' नामक कर वसूल की किया जाता था। मेले की समाप्ति पर यह राशि कचैड़ी को सौप दी जाती थी। कचैड़ी की यह जिम्मेदारी होती थी कि वह इस संग्रहित राशि का उपयोग तालाब की मरम्मत हेतु करें। इस प्रकार राज्य की ओर से तालाबों व अन्य जलीय स्त्रोतों की साफ-सफाई व मरम्मत का पूर्ण ध्यान रखा जाता था।

अधिकाशंत: जलीय स्त्रोतों की सार-संभाल की जिम्मेवारी स्थानीय लोगों के सुपुर्द होती थी। परन्तु जब स्थानीय लोग इस जिम्मेवारी का निर्वहन करने में आर्थिक रूप से अथवा संसाधनों की दृष्टि से अक्षम होते थे तब राज्य को इसे अपना कर्तव्य मानते हुए इसमें अपनी सहभागिता करनी पड़ती थी और प्रशासन द्वारा इनकी सुरक्षा हेतु अनेक उपाय किये जाते थे। राज्य द्वारा कुँओं की सुरक्षा हेतु माली को नियुक्त किया जाता था एवं कई बार सरकारी कर्मचारी भी नियुक्त किया जाता था।

राज्य में अकाल व सूखा जैसी प्राकृतिक आपदाओं के समय कुंओं का पानी सूख जाता था, जिससे गांवों के लोग अन्य जगह पलायन कर जाते थे। परिणामत: गांव सूने हो जाते थे। ऐसी परिस्थितियों में राज्य द्वारा कुओं का निर्माण करवाया जाता था।

इसी प्रकार से तत्कालीन शासक सूरसिंह ने सन 1614 ई. में सूरसागर तालाब का निर्माण करवाया जिसका अंकन *कौन्सिल रे हुकमा री बही,* नं. 8 वि.सं. 1932 में मिलता है। राजा डूंगरसिंह जी ने इसकी मरम्मत और सीढ़ियों का पुर्ननिर्माण भी करवाया था। इस तालाब का सर्वाधिक विकास सन् 1910 ई. से 1938 ई. तक हुआ। महाराजा गंगासिह ने इसके विकास हेतु बहुत प्रयास किए व धन खर्च किया।

इसी प्रकार से सांसोलाव तालाब के लिए कहा जाता है कि नत्थू महाराज ने आन्दोलन, भूख हड़ताल, धरने आदि करके इसके वर्तमान स्वरूप को बचाए रखा। बीकानेर का हर्षोलाव तालाब भी जातीय सजगता का एक जीता-जागता नमूना है। क्योकि मेलों-मगरियों के विशेष अवसरों पर तथा अन्य दिनों में भी हर्ष जाति के श्री मंगलचन्द हर्ष, श्री दाऊ जी हर्ष, श्री चंपालाल हर्ष आदि ने तालाब परिसर की चौकसी किया करते थे, ताकि कोई इसे किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुंचा सके।

बीकानेर के सुलखनियां गांव में लालगिरी नामक एक संत ने कुंआ खुदवाया। उसका प्रधान शिष्य लच्छीराम था, जिसने बीकानेर में 'अलखसागर' नाम का कुंआ बनवाया अर्थात जन साधारण के साथ-साथ साधु-सन्तों ने भी कुंए अर्थात पानी के स्रोत बनवाने में विशेष योगदान दिया। महाराजा अनूपसिंह का बनवाया हुआ ''अनोपसागर'' (चौतीना) कुंआ भी उल्लेखनीय है। नगर के बाहर के तालाबों में महाराजा सूरसिंह का बनवाया हुआ ''सूरसागर'' सबसे अच्छा कुआं माना जाता है, जिसमें छः-सात माह तक जल भरा रहता है। अधिकांशतः कुंओं का पानी पीने योग्य है।

इसी प्रकार अन्त में हम कह सकते है कि राज्य द्वारा जलीय इकाईयों के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु अपने स्तर पर विभिन्न प्रयास किये जाते थे। साथ ही इसके लिए आमजन की सहभागिता को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। इसलिए कम संसाधनों के बावजूद भी जल की कमी को अधिक विकट नहीं बनने दिया जाता था। शासक एवं प्रजा जल संरक्षण एवं उनकी देखभाल के लिए समान विचारशील रहते थे।

## संदर्भ


1. अनुपम मिश्र, *आज भी खरे है तालाब,* 2017, दिल्ली
2. *कागद बही,* नं. 33, वि.सं. 1884/1827 ई., बीकानेर रिकॉर्ड्स, रा.रा. अभिलेखागार, बीकानेर
3. *कागद बही,* नं. 3, वि.सं. 1827/1770 ई., बीकानेर रिकॉर्ड्स
4. *कागद बही,* नं. 24, वि.सं. 1875/1818 ई.
5. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, *बीकानेर राज्य का इतिहास,* प्रथम खण्ड, अजमेर, 1997
6. चन्द्रमणि सिंह, 'जल प्रबन्धन', *राजस्थान सुजस,* 2007
7. प्रभात गोस्वामी, 'बीकानेर के कुँआ, बावड़ी और सागर', *राजस्थान सुजस,* अंक-1998
8. ब्रजरतन जोशी, *जल और समाज,* बीकानेर, 2005
9. ब्रजमोहन सिंह परमार, 'राजस्थान की बावड़ियां', *राजस्थान सुजस,* अंक-1998, पृ. 25-37
10. बाल मुकुन्द ओझा, *झुन्झुनू के सतरंगी तालाब,* 1998
11. राजेन्द्र कुमार, *अठारहवीं सदी: बीकानेर,* लिट्रेरी सर्किल, जयपुर, 2021
12. राजेन्द्र कुमार, 'उत्तर-पश्चिमी राजस्थान में जल एवं पर्यावरण संरक्षण हेतु

राजकीय दृष्टिकोण (1750–1850)', *अभिलेख*, वॉल्यूम-5, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर, 2023, पृ. 218–234

13. *सनद परवाना बही*, नं. 10, वि.सं. 1827/1770 ई., जोधपुर रिकॉर्ड्स

14. *सनद परवाना बही*, नं. 13, वि.सं. 1830/1773 ई., जोधपुर रिकॉर्ड्स

**सहायक प्राध्यापक**

इतिहास

एस.जी.एन. खालसा पी.जी. कॉलेज,

अनूपगढ़ (राजस्थान)